|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

## || श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

**अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग**

5/6 (श्लोक 36-50), शनिवार, 27 सितंबर 2025

**विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल**

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/cKV8GxPMNno

# वर्णाश्रम व्यवस्था में कर्म- भगवद् प्राप्ति मार्ग

सुमधुर एवम् आत्मशुद्धि करने वाले कर्णप्रिय भगवत् भजनों के पश्चात् ईश्वर की असीम अनुकम्पा एवं गुरुदेव के आशीर्वाद से आज के विवेचन सत्र का शुभारम्भ भगवान् श्रीकृष्ण की प्रार्थना एवं दीप प्रज्वलन से होता है। आज श्रीभगवान् के श्रीमुख से उच्चारित श्रीमद्भगवद्गीता का यह विवेचन सत्र अट्ठारहवें अध्याय का है। इस सत्र के अन्तर्गत अट्ठारहवें अध्याय का सुन्दर विस्तारित विवेचन श्लोक सङ्ख्या छत्तीस से प्रारम्भ होता है तथा इस अध्याय के श्लोक सङ्ख्या पचास पर समाप्त होता है।

श्रीभगवान् की हम सभी पर अतिशय मङ्गलमय कृपा से हमारे यह सद्भाव जागृत हुए हैं कि आज हम स्वयं के जीवन में प्रत्येक क्षेत्र में विजय प्राप्त करने हेतु तथा अपनी आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होते हुए श्रीमद्भगवद्गीता के अध्ययन में प्रवृत्त हुए हैं।

आप सभी यहाँ उपस्थित हैं, अत: यह जानिए कि हमारे पुण्य-कर्मों, पूर्वजों के आशीर्वाद या सन्तों की कृपा-दृष्टि के फलस्वरूप श्रीभगवान् ने हमारा चयन स्वयं श्रीमद्भगवद्गीता की सेवा हेतु किया है अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीता को हमने नहीं, अपितु गीताजी ने हमारा चयन किया है, उनके पठन हेतु, मन्त्र सदृश श्लोकों के अर्थ को समझने हेतु तथा उसे अपने जीवन में, आचरण में उतारने हेतु। यह अध्याय श्रीमद्भगवद्गीता का सारभूत अध्याय है। इस अध्याय में श्रीमद्भगवद्गीता का सम्पूर्ण सार समाहित है। सन्त ज्ञानेश्वर महाराज द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय अट्ठारह को एक-अध्यायी गीता कह कर सम्बोधित किया। कितनी वृहद् है, इस अध्याय की महिमा, जिसका चिन्तन वर्तमान में हम कर रहे हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता के इस अन्तिम अध्याय का मनन एवं चिन्तन तथा उसे उचित प्रकार समझने मात्र से सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता को सार रूप में उचित प्रकार से समझा जा सकता है यह ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार छूटती हुई किसी ट्रेन के अन्तिम डिब्बे में सवार हो जाने से सम्पूर्ण ट्रेन पकड़ में आ जाती है।

**18.36**

**सुखं(न्) त्विदानीं(न्) त्रिविधं(म्), शृणु मे भरतर्षभ।**

**अभ्यासाद्रमते यत्र, दुःखान्तं(ञ्) च निगच्छति॥18.36॥**

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! अब तीन प्रकार के सुख को भी (तुम) मुझसे सुनो। जिसमें अभ्यास से रमण होता है और (जिससे) दुःखों का अन्त हो जाता है, ऐसा वह परमात्म-विषयक बुद्धि की प्रसन्नता से पैदा होने वाला जो सुख (सांसारिक आसक्ति के कारण) आरम्भ में विष की तरह (और) परिणाम में अमृत की तरह होता है, वह (सुख) सात्त्विक कहा गया है। (18.36-18.37)

**18.37**

**यत्तदग्रे विषमिव, परिणामेऽमृतोपमम्।**
**तत्सुखं(म्) सात्त्विकं(म्) प्रोक्तम्, आत्मबुद्धिप्रसादजम्॥18.37॥**

**विवेचन**- विगत विवेचन सत्रों में हमने देखा कि श्रीभगवान् ने तीन प्रकार की बुद्धि, धृति, कर्म, कर्ता तथा यज्ञ बतलाये।

पूर्ववर्ती सत्र में हमने धृति के चार प्रकारों का उल्लेख देखा।
इस श्लोक में श्रीभगवान् वर्णित करते हैं कि हे भारतश्रेष्ठ! अब मुझसे तीन प्रकार के सुखों के विषय में श्रवण करो, जिनके द्वारा बुद्धजीवी भोग करता है तथा जिनके द्वारा कभी-कभी दुखों का नाश हो जाता है।

इस अध्याय में श्रीभगवान् तीन प्रकार के सुखों का वर्णन करते हैं-

**त्विदानीं त्रिविधं**
**अर्थात् सात्त्विक सुख, राजसी सुख तथा तामसी सुख**

परन्तु हमारे सन्तों ने सात सुखों के विषय में उल्लेखित किया है-
**पहला सुख निरोगी काया, दूजा सुख घर मे हो माया।**
**तीजा सुख कुलवंती नारी, चौथा सुख पुत्र हो आज्ञाकारी।**
**पंचम सुख हो सुदेस मे वासा, छठा सुख राज हो पासा।**
**सातवां सुख हो संतोषी जीवन, ऐसा हो तो धन-धन हो जीवन।।**

सार यह है कि जब जीव को सन्तोष धन की प्राप्ति होती है तब समस्त प्रकार के भौतिक सुख अर्थात्

**गोधन गजधन बाजधन, और रतन सब खान।**
**जब आवे संतोष धन, सब धन धूली समान।।**

यहाँ श्रीभगवान् सात्त्विक सुख के विषय में उच्चारित करते हुए कहते हैं कि जो प्रारम्भ में विष जैसा प्रतीत होता है परन्तु अन्त में अमृत के सदृश्य है तथा जो मनुष्य में आत्म-साक्षात्कार जागृत करता है, वह सात्त्विक सुख कहलाता है।

श्रीभगवान् के अनुसार सात्त्विक सुख की यह विशेषता है कि उसकी प्राप्ति का प्रथम चरण अर्थात् सात्त्विक सुख की प्राप्ति हेतु किए जाने वाले अभ्यास प्रारम्भ में बेहद कष्टदायक प्रतीत होते हैं। अपितु अपने मन में सात्त्विक सुख की प्राप्ति हेतु किए जाने वाले उपायों का विचार भी मनुष्य को विचलित कर देता है।

प्रातःकाल शीघ्र जागना, योगाभ्यास करना, नियमित दिनचर्या, एकादशी व्रत करना गोवर्धन की परिक्रमा, प्रत्येक मास तीर्थयात्रा हेतु गमन, माला जाप।
यह समस्त कार्य, जो किसी साधक हेतु अति आवश्यक हैं तथा जिनसे जीवन में वास्तविक सुख लाभ होता है। नवीन साधक हेतु

इनका विचार-मात्र या प्रारम्भिक अभ्यास कठिन प्रतीत होता है।

कुछ साधक नवरात्रि में सम्पूर्ण रामायण के पारायण का व्रत लिये होते हैं।

ये समस्त व्रत जो अन्य व्यक्तियों को बेहद कष्टकारी प्रतीत हो सकते हैं परन्तु इसके विपरीत जो साधक अपनी साधना को नियमवत् पूर्ण कर रहे हैं, उन साधकों हेतु उनकी यह साधना अत्यन्त अधिक आनन्द का स्रोत होती है।
हम नवरात्रि के व्रत रखते हैं, जिसे भिन्न-भिन्न साधकों द्वारा पृथक्-पृथक् प्रकार से किये जाने के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है।

कुछ भक्त, जब नवरात्रि के व्रत करते हैं तब उनके शारीरिक भार में नवरात्रि के पश्चात् दो किलो की वृद्धि होती है। यह वृद्धि क्यों हुई?
क्योंकि वे भक्त सामान्य दिनों में ग्रहण किये जाने वाले भोजन की तुलना में अधिक मात्रा में भोजन ग्रहण करते हैं।
कोई साधक फल तो कोई जल से भी व्रत धारण करते हैं।

हमारे यशस्वी प्रधानमन्त्री, आदरणीय नरेन्द्र मोदी जी एक कर्तव्यनिष्ठ साधक हैं जिन्होंने पैंतालीस वर्षों में आज तक एक भी नवरात्रि का व्रत नहीं त्यागा।
वे सम्पूर्ण नवरात्रि व्रत धारण करते हैं। इस विषय की जानकारी तब हमें प्राप्त हुई जब वे अपने अमेरिका-दौरे पर थे, जहाँ वे अपने नवरात्रि व्रत के दौरान मात्र नीम्बू-पानी ग्रहण कर समस्त महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न कर रहे थे।

इस घटना के पश्चात् जब आदरणीय स्वामी जी उनकी माँ से मिले, तीन से चार वर्ष पूर्व, जब मोदी जी की माँ पूर्णत: स्वस्थ थीं, तब स्वामी जी द्वारा मोदी जी के इस व्रत के विषय में प्रश्न करने पर, उनकी माँ ने बेहद सहजता से उत्तर दिया कि हमारे घर में, परिवार के समस्त सदस्य नवरात्रि के व्रत का इसी प्रकार पालन करते हैं।

यह हमें अनूठा प्रतीत हो सकता है कि मोदी जी किस प्रकार अपने समस्त व्यस्त कार्यक्रमों के मध्य इतनी कठोर साधना में संलग्न रहते हैं परन्तु उनका यह व्यवहार न तो उनके या उनकी माँ हेतु असहजतापूर्ण है क्योंकि वे अपनी इस साधना में आनन्द का अनुभव करते हैं। उन्हें अपनी इस साधना में कष्ट का अनुभव नहीं होता। यह तो वे नवीन साधक हैं जो निरन्तर इसी विचार में कि मैं इतना कठिन अभ्यास कैसे करूँ, के द्वारा कष्ट प्राप्त करते हैं परन्तु निरन्तर प्रयास से इस प्रकार की साधना नित्य सुख देने वाली है।

आगे विवेचक अपने बाल्यकाल में घटित एक घटना के विषय में वर्णित करते हुए कहते हैं कि बाल्य समय में ऋषिकेश में अनेक सन्तों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सन्त जो कठोर नियमों का पालन करते थे। उनके यह नियम दो या चार दिन से नहीं अपितु पन्द्रह, बीस या पचास वर्षों से अधिक समय से क्रियान्वित थे।

उन्हीं सन्तों में एक माता जी भी थी जिन्होंने अपने जीवन के बाईस वर्षों तक मात्र गङ्गाजल ग्रहण किया था। यह कठिन साधनाएँ हमारी कल्पना से भी परे हैं।

ऋषिकेश में ही एक ब्रह्मचारी महाराज निवास करते थे। उनके द्वारा पालन किया जाने वाला नियम भी बेहद कठिन था। उनसे मिलने तथा ज्ञानप्राप्ति के अनेक अवसर प्राप्त हुए। एक दिन मैंने उन्हें अपने द्वारा प्रारम्भ किये गए व्रत के विषय में जानकारी दी। प्रारम्भ में तो वे बेहद प्रसन्न हुए परन्तु मेरे यह कह देने पर कि यह नियम मैं पुण्य प्राप्त करने हेतु कर रहा हूँ, उनके चेहरे पर तनिक गम्भीरता के भाव प्रतिलक्षित होने लगे। उन्होंने मुझसे कहा कि तुम्हारी शिक्षा अभी अपूर्ण है क्योंकि कोई भी साधना पुण्य प्राप्ति हेतु नहीं की जानी चाहिये।

पुण्यदृष्टि तो बेहद नगण्य है। जो भी साधना करो आनन्ददृष्टि सहित करो। पुण्यदृष्टि सदैव बन्धनकारी होती है। आनन्ददृष्टि मुक्तिप्रदायी है।
जीवन में सात्त्विक सुख वही है जो साधक के भीतर आनन्द उत्पन्न करे।

**कुछ प्राप्त करने का आनन्द राजस सुख है।**
**कुछ त्याग करने का आनन्द सात्त्विक सुख है।**

सात्त्विक सुख को इस प्रकार एक साधारण से दैनिक जीवन के उदाहरण से समझा जा सकता है कि आपको चाय पीना अच्छा लगता है परन्तु एक दिन घर में चाय कुछ कम बनी तब आपने यह कहते हुए कि आज चाय पीने की मेरी इच्छा नहीं है, अपनी चाय किसी अन्य सदस्य को दे दी तथा किसी को इस विषय में तनिक जानकारी भी नहीं होने दी। तब आप जिस सुख का अनुभव करते हैं, वह सुख अद्भुत है, अनुपम है।

किसी को बताने हेतु नहीं, किसी पुण्य हेतु नहीं, मात्र भीतर के आनन्द हेतु, यही सात्त्विक सुख है।

**विषय एवं इन्द्रियों के वियोग से उत्पन्न सुख सात्त्विक सुख है।**

**18.38**

**विषयेन्द्रियसंयोगाद्, यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।**
**परिणामे विषमिव, तत्सुखं (म्) राजसं (म्) स्मृतम्॥18.38॥**

जो सुख इन्द्रियों और विषयों के संयोग से (होता है), वह आरम्भ में अमृत की तरह (और) परिणाम में विष की तरह प्रतीत होता है, वह (सुख) राजस कहा गया है।

**विवेचन**- विषय एवं इन्द्रियों के संयोग से उत्पन्न होने वाला सुख राजसी सुख होता है जो प्रारम्भ में तो अमृततुल्य प्रतीत होता है किन्तु अन्त में विषतुल्य हो जाता है।

**अर्थात्**

जो सुख इन्द्रियों द्वारा उनके विषयों के संसर्ग से प्राप्त होता है तथा जो प्रारम्भ में अमृततुल्य तथा अन्त में विषतुल्य प्रतीत होता है, वह रजोगुणी कहलाता है।

विगत वर्ष हमने एक समाचार पढ़ा, जिसमें बताया गया था कि किस प्रकार एक चीनी नागरिक ने उस समय के नवीन आईफ़ोन का क्रय करने हेतु अपना एक गुर्दा बेच दिया परन्तु अगले वर्ष जब आईफ़ोन का पुनः नवीन संस्करण आयेगा, तब वह पुनः नवीन आईफ़ोन प्राप्त करने हेतु नवीन गुर्दा कहाँ से लायेगा!

इस प्रकार उस व्यक्ति को क्षणिक राजस सुख की अनुभूति हुई जो प्रारम्भ में तो अमृत-तुल्य प्रतीत होती है किन्तु अन्त में विष सदृश्य हो जाती है।

राजस सुख के इस विचार को प्रकट करती एक बेहद सुन्दर कविता- क्यों होता है ऐसा?

**क्यों कल्पना ख़ुशी की ख़ुशी से ज्यादा ख़ुशी देती है।**
**कि सामने की ख़ुशी मुट्ठी में रेत की तरह फिसल जाती है।।**

मनुष्य को इस सुख की प्रतीति तो होती है परन्तु वास्तव में वह उसे प्राप्त नहीं होता है। जैसे, यदि हम विचार कर रहे हैं कि किसी व्यक्ति-विशेष या वस्तु अथवा परिस्थिति-विशेष के अपने पक्ष में होते ही हम सुखी हो जाएँगे, तब हमारे मन के अनुसार होने पर भी हम कुछ ही क्षण प्रसन्न रहते हैं परन्तु अगले ही क्षण जीव का अन्तःकरण अन्य विषयों की प्राप्ति हेतु उद्वेलित हो उठता है। तब हम अन्य विषयों का भोग कर सुख प्राप्ति की इच्छा से युक्त हो जाते हैं तथा स्वयं द्वारा प्राप्त विषय-भोग से प्राप्त होने वाले सुख को अपने मस्तिष्क से विस्मृत कर देते हैं।

हमारी कुछ इच्छाएँ जैसे आईफ़ोन प्राप्ति की, विवाह करने की, गृह निर्माण आदि की। यह समस्त कामनाएँ किसी व्यक्ति के मन में लम्बे समय से हैं अत: उनकी पूर्ति हेतु वह कठोर परिश्रम भी करता है परन्तु जब उसकी यह इच्छा पूर्ण हो जाती है तब उससे प्राप्त सुख उस व्यक्ति के जीवन में अधिक समय तक नहीं ठहर पाता। एक कामना की पूर्ति सहित, उस जीव का मन यह विचार कर कि मेरी दूसरी इच्छा की पूर्ति में ही मेरा सुख निहित है, की प्राप्ति में तत्पर हो जाता है।

जैसे किसी व्यक्ति द्वारा वातानुकूलक क्रय किए जाने पर उसे तत्काल सुख का तो अनुभव होता है परन्तु दस वर्ष पश्चात् उस व्यक्ति हेतु वह सुख प्राप्ति का साधन न रह कर दुःख का कारक भी बन जाता है क्योंकि जब बिजली चली जाती है तब वह उस वातानुकूलक के न चलने पर दुःखी हो जाता है क्योंकि वह उस भौतिक वस्तु का दास हो जाता है।

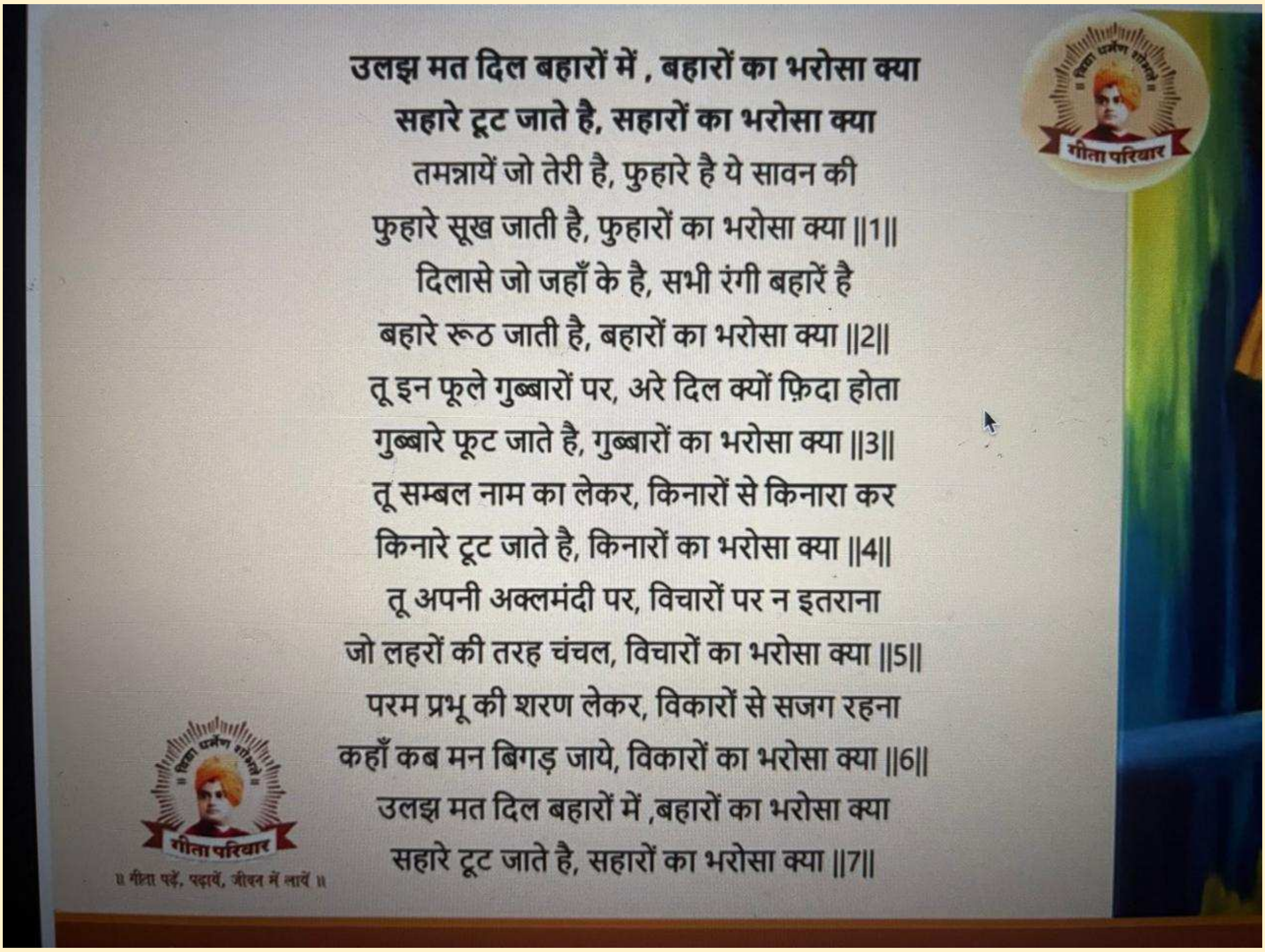


हम निरन्तर बहारों में उलझे रहते हैं कि मुझे यह प्राप्त हो जाए तब मैं अति प्रसन्न हो जाऊँगा परन्तु क्या कदापि ऐसा सम्भव है? क्या कोई व्यक्ति यह बता सकता है कि जब मुझे मेरी वह इच्छित वस्तु की प्राप्ति हुई तब मैं अति प्रसन्न हो गया। नहीं ऐसा कदापि सम्भव नहीं है।

तुलसीदास जी कहते हैं कि तुम्हारे समक्ष स्वयं परमात्मा उपस्थित हैं अत: तुम अपनी इच्छित वस्तु की प्राप्ति हेतु उनसे प्रार्थना कर सकते हो।

**क्या प्राप्त करने की इच्छा करूँ, जो सदैव स्थिर हो।**

राजस का आरम्भ अमृतमयी होने के कारण मन उसमें उलझता जाता है। जैसे मधुमेह के रोग से ग्रस्त होने पर भी मीठे का लोभ हम त्याग नहीं पाते, चाहे उस स्वाद को ग्रहण करने के पश्चात् हमें औषधियाँ ही क्यों न ग्रहण करनी पड़ें।
इसी प्रकार वर्तमान समय में मोबाइल पर रील देखना भी पूर्णतः समय का दुरुपयोग है परन्तु लोभवश हम उसका त्याग करने में असमर्थ हैं।

रजोगुणी तो फास्टफूड भी है परन्तु स्वाद के वशीभूत हो हम उसका उपभोग करते हैं, यह विचार पूर्णरूप से त्यागते हुए कि यह हमारे स्वास्थ्य हेतु अत्यन्त हानिकारक है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विचार करें तब पाते हैं कि अपने जीवन स्तर को सुधारने के उद्देश्य से व्यक्ति क्रेडिट कार्ड एवं ईएमआई के मोह जाल में उलझता जाता है। किसी वस्तु का क्रय करना है तथा धन नहीं है तब व्यक्ति धैर्यपूर्वक धन एकत्रित करने के स्थान पर किश्तों में वह वस्तु प्राप्त करना अधिक उचित समझता है जो प्रारम्भ में तो अमृत सदृश्य प्रतीत होता है परन्तु अन्त में उस व्यक्ति हेतु बेहद कष्टदायक सिद्ध होता है।

इस कष्ट के चलते व्यक्ति तनावग्रस्त हो उच्च रक्तचाप से ग्रसित हो जाता है।

जहाँ तक ऋण लेने का प्रश्न है तब वह ऋण लेना श्रेष्ठ होगा कि जब आप स्वयं के निवास हेतु घर क्रय करते हैं। यदि वहाँ पर भी धन की व्यवस्था बिना ऋण लिये हो रही हो तब वह स्थिति किसी भी व्यक्ति हेतु अधिक उपयुक्त होगी।

यूरोप एवं अन्य पश्चिमी राष्ट्रों में इस प्रकार के ऋण के चलते स्थिति अधिक विकट हुई है जहाँ राजसी सुख को प्राप्त करने के उद्देश्य से किए गए कार्यों ने वहाँ के नागरिकों को दुःख एवं तनाव के मार्ग पर धकेल दिया है।

यही स्थिति शनैः-शनैः भारत में भी उत्पन्न होती जा रही है। विगत कुछ वर्षों में भारत में भी मासिक ऋण के माध्यम से वस्तुओं के क्रय के चलन में वृद्धि हुई है, जिसके चलते वर्तमान समय में यहाँ के निवासी प्रेशर कुकर तक ऋण पर लेते हैं जो किसी परिवार या राष्ट्र की आर्थिक दशा हेतु उचित स्थिति नहीं है।

दो हजार दस में भारत की ऋण पर निर्भरता जब नगण्य थी तब विश्व में उत्पन्न हुई आर्थिक मन्दी से हमारा राष्ट्र अछूता रहा परन्तु वे पश्चिमी राष्ट्र जिनकी ऋण पर निर्भरता अधिक थी, उन्हें इस वैश्विक मन्दी का अंश बनना पड़ा।
अत: जीवन में सत्त्व जो अमृततुल्य है, को आत्मसात करना है तब ऐसी स्थिति में राजसी दृष्टि का पूर्णतया त्याग करना होगा।

**18.39**

**यदग्रे चानुबन्धे च, सुखं(म्) मोहनमात्मनः।**
**निद्रालस्यप्रमादोत्थं(न्), तत्तामसमुदाहृतम्॥18.39॥**

निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न होने वाला जो सुख आरम्भ में और परिणाम में अपने को मोहित करने वाला है, वह (सुख) तामस कहा गया है।

**विवेचन**- कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं, जिन्हें क्रोध करने, दूसरों को अपशब्द कहने में आनन्द आता है। उन्हें कलह करते हुए तथा कलह के पश्चात् भी सुख की प्राप्ति होती है। कुछ व्यक्ति स्वभावगत रूप से कलह-प्रिय होते हैं। मार्ग पर चलते हुए वाहन के किसी अन्य वाहन से न टकराने पर भी दूसरों से विवाद इस विषय पर कर लेते हैं कि-

**यदि वाहन टकरा जाता तो क्या होता?**
**जबकि उनके इस कृत्य का कोई भी औचित्य नहीं होता।**
**उन्हें तो मात्र कलह करने में ही आनन्द की अनुभूति होती है।**

अर्थात् जो सुख आत्म-साक्षात्कार के प्रति अन्धा है, जो प्रारम्भ से लेकर अन्त तक मोहकारक है एवं जो निद्रा, आलस्य तथा मोह से उत्पन्न होता है, वह तामसी कहलाता है।
इस प्रकार कलह करने वाले स्वतः ही प्रसिद्ध हो जाते हैं। जबकि उन्हें जानकारी ही नहीं होती कि वे प्रसिद्ध क्यों हुए हैं। उन्हें प्रतीत होता है कि वे सूक्ष्म दृष्टि वाले हैं। परन्तु वे यह नहीं जानते कि उनकी दृष्टि तो खोटी है।

उन्हें तीर्थस्थलों पर मात्र अस्वच्छता दृष्टिगोचर होती है।

**तमोगुणी प्रकृति का एक अन्य उदाहरण-**

एक गाँवों में एक स्त्री प्रतिदिन किसी साधू बाबा को उनके प्रवचन देने के पश्चात् भोजन अर्पित करती थी। एक दिन जब वह स्वामी जी हेतु भोजन लेकर आती है तब बाबाजी के प्रश्न करने पर कि बेटी आज तुम दुःखी क्यों हो। वह उत्तर देती है कि मेरे पति को मेरे द्वारा निर्मित भोजन कदापि स्वादिष्ट प्रतीत नहीं होता है अत: वे इस विषय को लेकर बेहद क्रोधित रहते हैं।

बाबा जी द्वारा उसकी समस्या के समाधान स्वरूप उसे आशीर्वाद प्रदान किया कि कल निश्चित ही तुम्हारी रसोई अन्नपूर्ण माँ की रसोई होगी। यह आशीर्वाद प्राप्त कर वह प्रसन्न हो घर की ओर अग्रसर होती है तथा अगले दिन वह पुनः बाबा जी हेतु भोजन लाती है। तब बाबा जी उसे देख पुनः चिन्तित हो जाते हैं क्योंकि आज उसके मुख पर घाव थे।

बाबा जी स्त्री से प्रश्न करते हैं कि क्या आज अन्नपूर्णा माँ जैसी रसोई नहीं बनी थी। वह कहती है, "बनी थी।" परन्तु उसके पति ने यह कहकर उसे थप्पड़ मारा था कि क्या घर में स्वर्ण के वृक्ष उत्पन्न हो रहे हैं जो तुम यह पकवान निर्मित कर रही हो तथा क्या तुम मुझे अधिक भोजन कराके मृत्यु देना चाहती हो।

अत: तामसी प्रवृत्ति का मनुष्य कदापि प्रसन्न नहीं होता है। वह क्रोध एवं कलह करने के नित नए अवसरों को तलाशता है। वह स्वयं उद्वेग में रहता है तथा दूसरों को भी उद्वेलित करता रहता है।

तमोगुणी प्रसन्नता का एक अन्य उदाहरण अपनी देह पर टेंटू निर्माण भी है, जिसके चलते मनुष्य कष्ट का अनुभव करता है तथा जिसके निकाले जाने पर भी कष्ट होता है परन्तु वह इस दोषपूर्ण कार्य को न करने का विचार तक अपने मस्तिष्क में कदापि नहीं लाता।

अत्यधिक निद्रासीन मनुष्य जो सदैव आलस्य में रहता है। उसका जीवन लक्ष्य तमोगुणी सुख की प्राप्ति है।

**18.40**

**न तदस्ति पृथिव्यां(म्) वा, दिवि देवेषु वा पुनः।**
**सत्त्वं(म्) प्रकृतिजैर्मुक्तं(म्), यदेभिः(स्) स्यात्त्रिभिर्गुणैः॥18.40॥**

पृथ्वी में या स्वर्ग में अथवा देवताओं में तथा इनके सिवाय और कहीं भी वह (ऐसी कोई) वस्तु नहीं है, जो प्रकृति से उत्पन्न इन तीनों गुणों से रहित हो।

**विवेचन**- इस लोक में, स्वर्ग लोक में या देवताओं के मध्य में कोई भी ऐसा व्यक्ति विद्यमान नहीं है, जो प्रकृति के तीनों गुणों से मुक्त हो। सम्पूर्ण सृष्टि में उत्पन्न प्रत्येक जीव में इन तीनों गुणों का समावेश है। परन्तु जीवों पर इनका प्रभाव भिन्न-भिन्न है अर्थात्

कोई जीव सतोगुणी प्रवृत्ति से युक्त है क्योंकि उसमें सत्त्व अधिक है।

राजस की प्रधानता के कारण कोई मनुष्य रजोगुणी प्रवृत्ति का है तथा तमस की प्रधानता के कारण जीव की प्रवृत्ति तमोगुणी होती है।

केवल उत्तम संन्यासी ही इन तीनों गुणों के पार जा सकते हैं अर्थात् गुणातीत अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं।

किसी उत्तम संन्यासी की यह गुणातीत अवस्था श्रीभगवान् तृतीय अध्याय में वर्णित की है।

श्रीभगवान् वर्णाश्रम धर्म का वर्णन करते हैं। प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब सम्पूर्ण सृष्टि प्रकृति के इन तीनों गुणों के अधीन है, तब हम क्या करें? क्या न करें?
श्रीभगवान् कहते हैं कि मैंने इसकी भी व्यवस्था की है।

**18.41**

**ब्राह्मणक्षत्रियविशां(म्), शूद्राणां(ञ्) च परन्तप।**
**कर्माणि प्रविभक्तानि, स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥18.41॥**

हे परंतप! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्म स्वभाव से उत्पन्न हुए तीनों गुणों के द्वारा विभक्त किये गये हैं।

**विवेचन-** हे परन्तप! ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों में प्रकृति के गुणों के अनुसार उनके स्वभाव द्वारा उत्पन्न गुणों के द्वारा भेद किया जाता है।

हम किस वर्ण में, किस घर में, किन माता-पिता से, कौन से संस्कार सहित इस संसार में जन्मे, यह मात्र संयोग नहीं है। यह हमारे पूर्वजन्मों के कर्मों का ही परिणाम है। कुछ लोग कहते हैं कि वह ब्राह्मण परिवार में जन्मा है। उसमें क्या विशेष है?

निःसन्देह विशेष है, उस जीव द्वारा किए गए अपने पूर्वजन्म के कर्म, जिसके परिणामस्वरूप उसे इस जन्म में ब्राह्मण परिवार की प्राप्ति हुई।
अपने-अपने वर्णों में वृत्ति अनुसार जन्म तो प्राप्त हुआ परन्तु यदि उसे कर्म से धारण नहीं किया तब वृत्ति का लोप हो जाता है। अत: जन्म से उस वृत्ति की प्राप्ति विशेष अवश्य है परन्तु कर्म द्वारा उसकी रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है।

जिस वर्ण में आप उत्पन्न हुए, आजीवन वही वर्ण रहेगा, यह आवश्यक नहीं। ऐसी हमारी शास्त्र परम्परा नहीं है।

सञ्जय ने सूत कुल ने जन्म लिया परन्तु शास्त्र परम्परा अनुसार वेदव्यास जी ने उन्हें ब्राह्मण होने का वरदान दिया। अपने मित्र कर्ण को दुर्योधन ने क्षत्रिय घोषित किया।

**विश्वामित्र का वर्ण परिवर्तन-**
विश्वामित्र ने क्षत्रिय कुल में जन्म लिया। उनका प्रारम्भिक नाम राजा कौशिक था। वशिष्ठ ऋषि से कुछ मतभेद होने पर उन्होंने निश्चय किया कि वे ब्राह्मण बनेंगें।

अपने सङ्कल्प को दृढ़ता प्रदान करते हुए उन्होंने ऋषि, महर्षि तत्पश्चात् ब्रह्मर्षि बनने की ठानी। हजारों वर्षों की कठोर तपस्या से उत्पन्न तपोबल के प्रभाव स्वरूप सर्वप्रथम उन्होंने ब्रह्मतत्त्व तत्पश्चात् ऋषित्त्व, महृषित्त्व तदोपरान्त ब्रह्मृषित्त्व की प्राप्ति की। उसी जन्म में उसी देह सहित अपने कर्मों के बल पर उन्होंने यह महानतम उपलब्धियाँ प्राप्त की।

अत: कर्मों द्वारा वर्ण में परिवर्तन सम्भव है। किसे हम ब्राह्मण कहें, ब्राह्मण के उन गुणों को श्रीभगवान् वर्णित करते हुए कहते हैं।

**18.42**

### शमो दमस्तपः(श्) शौचं(ङ्), क्षान्तिरार्जवमेव च।
### ज्ञानंविज्ञानमास्तिक्यं(म्), ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥18.42॥

मन का निग्रह करना, इन्द्रियों को वश में करना; धर्मपालन के लिये कष्ट सहना; बाहर-भीतर से शुद्ध रहना; दूसरों के अपराध को क्षमा करना; शरीर, मन आदि में सरलता रखना; वेद, शास्त्र आदि का ज्ञान होना; यज्ञविधि को अनुभव में लाना; और परमात्मा, वेद आदि में आस्तिक भाव रखना - (ये सबके सब ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।

**विवेचन**- श्रीभगवान् इस श्लोक में ब्राह्मण के नौ लक्षण वर्णित करते हैं। यदि आप अपने को ब्राह्मण मानते हो तो स्वयं का अवलोकन करो।

किसी ब्राह्मण परिवार में जन्म हो गया तथा अपने नाम में शर्मा, उपाध्याय, पाण्डे लगाने लगे। मात्र अपने इस परिचय से स्वयं को ब्राह्मण समझने की अनुमति श्रीभगवान् कदापि नहीं देते हैं। ब्राह्मणत्त्व की प्राप्ति हेतु कुछ नियमों का पालन करना होता है। ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म क्या हैं, उन्हें जानना आवश्यक है-

- क्षमा- जिससे अन्त:करण में दयालुता का भाव निहित हो।
- दमः- जो अपनी इन्द्रियों का निग्रह करे।
- तप:- जो धर्म पालन हेतु कष्ट सह सके।
- शौच:- जो बाह्य एवं भीतर से शुद्धि रख सके।
- शान्ति- जो दूसरों के अपराधों को क्षमा कर सके।
- आर्जवम्- जो सरलता का जीवन जिये। जिसने जीवन में षड्यंत्र, कपट न हो।
- आस्तिक्यम्- जो वेदों, शास्त्रों के वचनों पर जिसका आस्तिकता है।
- ज्ञानम्- जो वेद-शास्त्रों का अध्ययन करता है।
- विज्ञानम्- जो अपने ज्ञान को अनुभव के आधार पर जाँचता है।

ये समस्त गुण ब्राह्मण के स्वाभाविक हैं।
वर्तमान समय में ब्राह्मण कुल में जन्में व्यक्ति मांसाहार, अण्डा भोजन रूप में ग्रहण करते हैं। शराब पीते हैं। किसी के भी द्वारा निर्मित भोजन ग्रहण कर लेते हैं। तब वे अपने ब्राह्मणत्त्व की रक्षा कैसे करेंगे? यह विचारणीय प्रश्न है।

वर्तमान समय में सोशल मीडिया ने यह देखने को मिलता है कि हम (ब्राह्मण) परशुराम के वंशज हैं। यह कैसे सम्भव है जबकि परशुराम जी तो भगवान् विष्णु के अवतार हैं। भगवान् परशुराम ब्राह्मणों के आदर्श कदापि नहीं हो सकते। ब्राह्मणों के आदर्श तो क्षमाशील ब्राह्मण हैं। जिन्होंने तपस्या की है तथा समाज हेतु कल्याणकारी कार्यों में सदैव तत्पर रहें हैं। कुछ ब्राह्मण क्षमाशीलता के स्थान पर क्रोध को धारण किए हुए स्वयं को भगवान् परशुराम से जोड़ते हैं।

जब बालसंस्कार केंद्रों में बालकों को श्रीमद्भगवद्गीता जी के श्लोक कण्ठस्थ कराये जाते हैं तब निश्चित ही ब्राह्मण बालक अपनी आनुवंशिक क्षमताओं के कारण उन श्लोकों का कण्ठस्थीकरण बेहद सरलता से कर लेते हैं।

उनके इस गुण का, जो कि वंशानुगत है, उसका रक्षण भी आवश्यक है। हमें यह भी विचार करना होगा कि अगला जन्म क्या मिलेगा?
यदि मैं इस जन्म में ब्राह्मणत्त्व का पालन नहीं करता तब अगला जन्म शुद्र वर्ण में भी प्राप्त हो सकता है। इसीप्रकार शुद्र वर्ण में उत्पन्न मनुष्य ब्राह्मण के कर्म करते हुए अगले जन्म में ब्राह्मण के वर्ण में उत्पन्न हो सकता है।

यह विचार श्रीमद्भगवद्गीता जी का प्रामाणिक विचार है।

**18.43**

**शौर्यं(न्) तेजो धृतिर्दाक्ष्यं(म्), युद्धे चाप्यपलायनम्।**
**दानमीश्वरभावश्च, क्षात्रं(ङ्) कर्म स्वभावजम्॥18.43॥**

शूरवीरता, तेज, धैर्य, प्रजा के संचालन आदि की विशेष चतुरता, युद्ध में कभी पीठ न दिखाना, दान करना और शासन करने का भाव - (ये सबके सब) क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म है

**विवेचन**- इस श्लोक ने श्रीभगवान् ने क्षत्रियों के सात लक्षण उच्चारित किये हैं। वीरता, शक्ति, सङ्कल्प, दक्षता, युद्ध में धैर्य, उदारता तथा नेतृत्व- ये क्षत्रियों के स्वाभाविक गुण हैं।

**18.44**

**कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं(म्), वैश्यकर्म स्वभावजम्।**
**परिचर्यात्मकं(ङ्) कर्म, शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥18.44॥**

खेती करना, गायों की रक्षा करना और व्यापार करना - (ये सबके सब) वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं (तथा) चारों वर्णों की सेवा करना शूद्र का भी स्वाभाविक कर्म है।

**विवेचन-** इस श्लोक के माध्यम से श्रीभगवान् ने वैश्य के तीन लक्षण उच्चारित किये हैं। कृषि करना, गौ-रक्षा तथा व्यापार वैश्यों के स्वाभाविक कर्म हैं तथा शूद्रों का कर्म श्रम एवं अन्यों की सेवा करना है अर्थात् नौकरी करना शूद्रों का स्वाभाविक कर्म है।

सेवा के परिवर्तित होते नामों के आधार पर एक सन्त महाराज ने बहुत अनूठा विश्लेषण किया है-

सेवा को विगत वर्षों में नौकरी कहते थे। जिसका अर्थ निकाला गया- एक व्यक्ति के जीविकोपार्जन से परिवार के नौ सदस्य अपना जीवन यापन कर लेते थे।
तत्पश्चात् उसका नाम चाकरी हुआ। जिसमें परिवार के चार सदस्य अपनी आजीविका चलाते थे।

महँगाई में वृद्धि सहित सेवा के नाम में आया परिवर्तन उसे चाकरी से तनख्वाह बना गया। जिसमें एक ही तन अपना जीवन यापन कर सकता था।
महँगाई में निरन्तर वृद्धि ने तनख्वाह को वेतन बना दिया। अब उसमें एक देह भी अपना जीवन यापन नहीं कर सकता है।

यह मात्र विनोद हेतु है। जो दूसरों की सेवा में तत्पर हैं, नौकरी करता हैं, वे समस्त मनुष्य शुद्र हैं।

**18.45**

**स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः(स्), संसिद्धिं(म्) लभते नरः।**
**स्वकर्मनिरतः(स्) सिद्धिं(म्), यथा विन्दति तच्छृणु॥18.45॥**

अपने-अपने कर्म में प्रीतिपूर्वक लगा हुआ मनुष्य सम्यक् सिद्धि (परमात्मा)को प्राप्त कर लेता है। अपने कर्म में लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकार सिद्धि को प्राप्त होता है? उस प्रकार को (तू मुझसे) सुन।

**विवेचन**- अपने-अपने कर्म के गुणों का पालन करते हुए प्रत्येक व्यक्ति सिद्ध हो सकता है। अब तुम मुझसे श्रवण करो कि यह किस प्रकार किया जा सकता है।

जिस प्रकार सामान्य लोगों द्वारा अपने दैनिक कर्तव्यों के माध्यम से भगवान् को प्राप्त करने की कहानियों का वर्णन मिलता है-
* तुलाधार वैश्य - निष्पक्षता तथा निष्कपटता के प्रति समर्पित एक व्यापारी, जिसने व्यापार में सत्यता और कर्त्तव्य निष्ठा के माध्यम से भगवान् को प्राप्त किया।

* सदन कसाई - एक कसाई जिसकी भक्ति और अपनी विनम्रता व कर्तव्य में सत्यता ने उसे आध्यात्मिक रूप से ऊपर उठाया।
* गणिका वेश्या - यहाँ तक कि एक वेश्या ने भी, पश्चाताप और विश्वास के साथ अपना हृदय भगवान् को अर्पित करके, आत्मसाक्षात्कार प्राप्त किया।

इन उदाहरणों के माध्यम से यह स्पष्ट है कि जो मनुष्य अपने नियत वर्णाश्रमानुसार कर्मों को पूर्ण रूप से कर्तव्यनिष्ठा एवं श्रद्धा सहित यह विचार अपने अन्त:करण में रखते हुए करेगा कि यह समस्त कर्म भगवान् को समर्पित हैं। तब वह मनुष्य निश्चित ही सिद्धि को प्राप्त करेगा तथा उसे स्वतः ही भगवद् तत्त्व की प्राप्ति होगी।

स्वयं के कर्मों को श्रेष्ठ समझते हुए उनमें उपस्थित त्रुटियों का निवारण करना ही उचित है।

**18.46**

**यतः(फ्) प्रवृत्तिर्भूतानां(म्), येन सर्वमिदं(न्) ततम्।**
**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य, सिद्धिं(म्) विन्दति मानवः॥18.46॥**

जिस परमात्मा से सम्पूर्ण प्राणियों की प्रवृत्ति (उत्पत्ति) होती है (और) जिससे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है, उस परमात्मा का अपने कर्म के द्वारा पूजन करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

**विवेचन-** जो समस्त प्राणियों का उद्गम है तथा सर्वव्यापी है, उस भगवान् की उपासना करके मनुष्य अपने कर्म करते हुए पूर्णता प्राप्त कर सकता है।

**18.47**

**श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः(फ्), परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।**
**स्वभावनियतं(ङ्) कर्म, कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥18.47॥**

अच्छी तरह अनुष्ठान किये हुए परधर्म से गुणरहित (भी) अपना धर्म श्रेष्ठ है। (कारण कि) स्वभाव से नियत किये हुए स्वधर्मरूप कर्म को करता हुआ (मनुष्य) पाप को प्राप्त नहीं होता।

**विवेचन-** अपने वृत्तिपरक कार्य को करना, चाहे वह कितना ही त्रुटिपूर्ण ढङ्ग से क्यों न किया जाए, अन्य किसी कार्य को स्वीकार करने की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। अपने स्वभाव के अनुसार निर्दिष्ट कर्म कदापि पाप से प्रभावित नहीं होते।

**18.48**

**सहजं(ङ्) कर्म कौन्तेय, सदोषमपि न त्यजेत्।**
**सर्वारम्भा हि दोषेण, धूमेनाग्निरिवावृताः॥18.48॥**

हे कुन्तीनन्दन ! दोषयुक्त होने पर भी सहज कर्म का त्याग नहीं करना चाहिये; क्योंकि सम्पूर्ण कर्म धुएँ से अग्नि की तरह (किसी न किसी) दोष से युक्त हैं।

**विवेचन**- प्रत्येक उद्योग (प्रयास) किसी न किसी दोष से आवृत होता है, जिस प्रकार अग्नि धुएँ से आवृत रहती है। अतएव हे कुन्तीपुत्र! मनुष्य को चाहिए कि स्वभाव से उत्पन्न कर्म को, भले ही वह दोषपूर्ण क्यों न हो, कभी त्यागे नहीं।

यहाँ जाबाली नामक ऋषि की कथा का श्रवण करना उपयुक्त होगा। जिसके माध्यम से हम श्रीभगवान् द्वारा उच्चारित इस श्लोक का अर्थ उचित प्रकार समझ सकते हैं-

वे तुलाधार के समीप जा प्रश्न करते हैं कि यह समस्त सिद्धियाँ कैसे प्राप्त की जबकि तुम्हें न तो वेदों का ज्ञान है, न ही तुमने जप, तप उपवास ही किया है तथापि तुम सिद्ध पुरुष हो, ऐसा कैसे सम्भव है?

तुलाधार उत्तर देता है कि निश्चित ही मैं वन नहीं गया परन्तु मैं अपने समस्त ग्राहकों को भगवान् सदृश्य मानते हुए उनकी सेवा करता हूँ। उन्हें प्रसन्न रखता हूँ तथा मैंने आजतक एक नये पैसे की चोरी नहीं की।

अपने कर्तव्य कर्मों को भगवद् निष्ठा से करने पर ही भगवद् प्राप्ति सम्भव है।

सदन कसाई से जब महाराज द्वारा प्रश्न पूछा गया कि किसी प्राणी की हत्या कर उसके माँस का विक्रय कर अपनी आजीविका चलाना, उचित कार्य नहीं है। अत: तुम यह क्यों करते हो?
तब सदन कसाई उन्हें उत्तर देता है कि आजतक मैंने एक भी निरीह प्राणी की हत्या नहीं की। जो मृत्यु को प्राप्त होते हैं, मैं मात्र उन्हीं का माँस विक्रय करता हूँ लेकिन तथा चूँकि यह मेरे परिवार का, मेरे कुल का कार्य है अत: मैं इस कार्य को पूर्ण निष्ठा सहित अपना कर्तव्य समझते हुए करता हूँ।

**एक नन्हें बालक की कथा**-

समुद्र ही तट पर एक बालक खड़ा था। समुद्र में ज्वार उठने से ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही थीं तथा उन लहरों सहित समुद्र से असङ्ख्य जैलीफिश भी मुहाने पर पहुँच रहीं थीं। जिन्हें वह बालक निरन्तर समुद्र में बहा रहा था। दूर उपस्थित एक व्यक्ति बालक को इस प्रकार जैलीफिश के रक्षण हेतु प्रयास करते देख रहा था। वह व्यक्ति, उस बालक के निकट आकर उसके द्वारा किये जा रहे इस कृत्य को रुकवाने के उद्देश्य से कहता है कि बेटा, मुझे ज्ञात है कि तुम अच्छे हो परन्तु प्रकृति के समक्ष हम नगण्य हैं। तुम्हारे यह प्रयास इन सैकड़ों मछलियों को नहीं बचा सकते। तब बालक उत्तर देता है कि मै जानता हूँ कि मैं समस्त मछलियों को तो नहीं बचा सकता परन्तु कुछ मछलियाँ तो मेरे द्वार निश्चित ही रक्षित हो सकती हैं अत: मैं अपने प्रयास को कैसे त्याग सकता हूँ।

इस कथा से यह निष्कर्ष निकलता है कि-
**I can’t change everything but there is always something which I can do.**

संसार में हम समस्त जीवों को प्रसन्न नहीं कर सकते परन्तु अपने वर्णाश्रम के निहित कर्मों का पालन श्रद्धा पूर्वक करते हुए कुछ जीवात्माओं को तो प्रसन्न कर ही सकते हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों को अपने कर्मों से समाज को प्रसन्न करने का प्रयास करना चाहिये।

हम भण्डारे करते हैं, कम्बल वितरित करते हैं। क्या कभी हमने अपने सेवकों को सुविधाएँ प्रदान करने के विषय में विचार किया है?

**18.49**

**असक्तबुद्धिः(स्) सर्वत्र, जितात्मा विगतस्पृहः।**
**नैष्कर्म्यसिद्धिं(म्) परमां(म्), सन्न्यासेनाधिगच्छति॥18.49॥**

जिसकी बुद्धि सब जगह आसक्तिरहित है, जिसने शरीर को वश में कर रखा है, जो स्पृहारहित है (वह मनुष्य) सांख्ययोग के द्वारा सर्वश्रेष्ठ नैष्कर्म्य-सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

**18.50**

**सिद्धिं(म्) प्राप्तो यथा ब्रह्म, तथाप्नोति निबोध मे।**
**समासेनैव कौन्तेय, निष्ठा ज्ञानस्य या परा॥18.50॥**

हे कौन्तेय ! सिद्धि (अन्तःकरण की शुद्धि) को प्राप्त हुआ साधक ब्रह्म को, जो कि ज्ञान की परा निष्ठा है, जिस प्रकार से प्राप्त होता है, उस प्रकार को (तुम) मुझसे संक्षेप में ही समझो।

**विवेचन-** श्रीभगवान कहते हैं, "अर्जुन! सर्वत्र आसक्तिरहित बुद्धि वाला स्पृहरहित तथा जीते हुए अन्तःकरण वाला पुरुष साङ्ख्ययोग के द्वारा उस परम नैष्कर्म्य सिद्धि को प्राप्त होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता जी का विषय वर्ण व्यवस्था नहीं है अपितु मानव कल्याण है। हमारी तुच्छ दृष्टि श्रीमद्भगवद्गीता जी के श्लोकों को लेकर वाद-विवाद करती है जबकि वे विवाद हेतु नहीं संवाद हेतु हैं। जो आत्मसंयमी तथा अनासक्त है एवं जो समस्त भौतिक भोगों की परवाह नहीं करता, वह संन्यास के अभ्यास द्वारा कर्मफल से मुक्ति की सर्वोच्च सिद्ध-अवस्था प्राप्त कर सकता है। श्रीभगवान् यहाँ कर्म न करने की प्रेरणा नहीं देते अपितु पूर्ण निष्ठा सहित निष्काम कर्म करने को प्रेरित करते हैं।

**नैष्कर्म्य का अर्थ है निष्काम कर्म।**
मैं कर्म करता हूँ परन्तु मुझे फल की इच्छा नहीं है।
कर्म में अकर्म है।

हम भोजन ग्रहण कर कहते हैं कि आज बेहद स्वादिष्ट भोजन किया। यह कदापि नहीं कहते कि आज उस स्वादिष्ट भोजन को मैंने अच्छे से पचाया। भोजन ग्रहण करने को अपना कर्म मान लेते है जबकि भोजन को पचाने को हम अपना कर्म नहीं समझते।
एक अन्य उदाहरण जो हमें भगवद् कृपा के विषय में अवगत कराता है-

हम जानते हैं कि कार चाबी से प्रारम्भ होती है। यहाँ इञ्जन कामना है। गियर लगते ही इञ्जन के प्रभाव से कार चलने लगती है। गियर कर्म हैं। कामना से कार्य की उत्पत्ति होती है परन्तु ढलान पर हम इञ्जन बन्द कर देते हैं तब भी कार चलती रहती है जबकि इञ्जन रूपी कामना उपस्थित ही नहीं है। जब तक कामना रूपी इञ्जन से कर्म रूपी गियर लगते रहेंगे तब तक नैष्कर्म्य की प्राप्ति नहीं होगी। जिस दिन कामना रूपी इञ्जिन स्वतः ही अवरोधित हो जाएगा तब समस्त कर्म भगवद्कृपा से होंगे।

अत: कार का ढलान पर होना ही नैष्कर्म्य है।
**गुणा गुणेषु वर्तन्ते।।**

तीन मुख्य बिन्दु - असत् बुद्धि, स्पृहा एवं जितात्मा।
चाँदी के डिब्बे को जिसमें कपूर रखा था या रूह-आफजा की शीशी को बार-बार धोने पर जिस प्रकार उनसे पदार्थ की गन्ध नहीं जाती वैसे ही स्पृहा है किसी विषय का एक बार भोग करने पर वह जीव के मन से चिपक जाता है तथा उसे निरन्तर उस विषय भोग का विचार मन में आता रहता है।

साधना के बिना स्पृहा से मुक्ति प्राप्त नहीं होती तथा जब किसी साधक को स्पृहा से मुक्ति मिल जाती है तब आठों सिद्धियाँ भी उसको प्राप्त सिद्धि के समक्ष सूक्ष्म प्रतीत होती हैं।

यह आठ सिद्धियाँ हैं- **अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व** हैं।

अत: हे कुन्तीपुत्र! जिस प्रकार इस सिद्धि को प्राप्त हुआ व्यक्ति परम सिद्धावस्था अर्थात् ब्रह्म को, जो सर्वोच्च ज्ञान की अवस्था है, प्राप्त करता है, उसका मैं संक्षेप में तुमसे वर्णन करूँगा, उसे तुम जानो।

एक समय का प्रसङ्ग है। श्रीकृष्ण गोपियों को उपदेश दे रहे थे परन्तु वे श्रीकृष्ण के उन वचनों के श्रवण की इच्छुक न हो, स्वयं के मन में विभिन्न प्रकार के विचारों में मग्न थी। वे विचार कर रही थीं कि यह माखन चोर हमें क्या उपदेश देगा? उनकी इस मनःस्थिति को श्रीकृष्ण भाँप लेते हैं तथा उन्हें सबक सिखाने के उद्देश्य से गोपियों को यमुना तट पर आए दुर्वासा ऋषि के सेवार्थ उनके लिए छप्पन भोग निर्मित कर, ले जाने हेतु आग्रह करते हैं। श्रीकृष्ण गोपियों से कहते हैं कि उनके द्वारा दुर्वासा ऋषि के सेवा करने पर वे गोपियों को यथायोग्य वरदान प्रदान करेंगे।

श्रीकृष्ण के कहे वचनों को स्वीकार करते हुए गोपियाँ भोजन निर्माण कर जब यमुना तट पर पहुँची तब देखती हैं कि नदी में जल का बहाव अधिक तीव्र है अत: वे यमुना जी को पार नहीं कर सकतीं। चूँकि उन्हें नदी के दूसरी ओर जाना था अत: वे सहायता हेतु श्रीकृष्ण के निकट आती हैं तब श्रीकृष्ण उनसे कहते हैं कि यमुना जी से कहना कि यदि मैंने अर्थात् श्रीकृष्ण ने कभी भी स्त्री मुख न देखा हो तो हमे जाने का मार्ग प्रशस्त करिये।

गोपियों को श्रीकृष्ण की इस बात पर बेहद आश्चर्य हुआ कि यह तो हमारा मुख प्रतिदिन देखते हैं तब यमुना जी हमें कैसे मार्ग प्रदान करेंगी। परन्तु होता उनके विचार के विपरीत। यमुना जी उन्हें मार्ग प्रदान कर देती हैं। तत्पश्चात वे महर्षि के आश्रम पहुँच उनसे भोजन ग्रहण करने का आग्रह करती हैं। श्रीकृष्ण के निर्देश पर गोपियों को आया जान ऋषि उनका सत्कार स्वीकार कर भोजन ग्रहण कर लेते हैं तथा उन्हें आशीर्वाद देते हैं। जब वे प्रसन्न हो वापस यमुना नदी के तट पर पहुँचती हैं, उनका जल स्तर पुनः बढ़ता हुआ पाती हैं।

तब वे निवेदन करती हुई दुर्वासा ऋषि के समक्ष पुनः उपस्थित हो प्रार्थना करती हैं कि वे उन्हें यमुना जी पार करने का कोई मार्ग सुझाएँ। दुर्वासा ऋषि उनसे कहते हैं कि यमुना जी से कहना कि यदि मैंने दूर्वा के अतिरिक्त कभी कोई अन्य पदार्थ भोजन रूप ग्रहण न किया हो तो गोपियों को मार्ग प्रदान करें। ऋषि की बात का श्रवण गोपियों को अचम्भित कर देता है।

ऋषि के कहे वचन तथा श्रीकृष्ण के कहे वचनों में समानता थी जबकि क्या श्रीकृष्ण ने कदापि स्त्रीमुख नहीं देखा या दुर्वासा ऋषि ने पन्द्रह थाल भोजन के करने के पश्चात भी कभी दूर्वा के अतिरिक्त कुछ न ग्रहण किया। यमुना जी द्वारा मार्ग मिल जाना उनके लिए किसी आश्चर्य से कम न था अत: वे निश्चय करती हैं कि श्रीकृष्ण के समक्ष जा इस प्रश्न का उत्तर अवश्य पूछेगीं।

जब वे श्रीकृष्ण के समक्ष पहुँचती हैं तब वे उनके मनोभाव को समझ, गोपियों से कहते हैं कि मैं तुम्हारे साथ रहता अवश्य हूँ परन्तु मैं भोगों को कदापि स्पर्श नहीं करता। उसी प्रकार दुर्वासा ऋषि ने तुम्हारे द्वारा ले जाया गया भोजन निश्चित ही ग्रहण किया परन्तु वे भी उस भोग में लीन नहीं हुए। उनके हेतु वह भोजन भी दूर्वा ग्रहण करने सदृश्य था। वे गुणातीत है अर्थात् ऐसा नहीं है कि गुणातीत मनुष्य भोजन ग्रहण नहीं करता या चलता नहीं या व्यवहार नहीं करता। वह समस्त कार्य एक साधारण मनुष्य जैसे ही करता है परन्तु उसमें एवं सामान्य जन में अन्तर मात्र यह है कि वह किसी भी परिस्थिति में किसी भी पदार्थ में या भोग में सङ्लग्न नहीं होता।

**यही पूर्ण सिद्धि प्राप्त करने का एक मात्र मार्ग है।**

भगवद् भजन के  साथ ही आज का विवेचन सत्र समाप्त होता है।

**प्रश्नोत्तर**

**प्रश्नकर्ता-** शुभा दीदी
**प्रश्न-** गीताजी के पारायण में कहीं-कहीं पर श्लोक के उच्चारण में त्रुटियाँ हो जाती हैं। उसका कोई दोष तो नहीं है?
**उत्तर-** बिल्कुल नहीं! आप सभी एक बात ध्यान रखिए कि यदि हमने शुद्ध पाठ किया तो उसका मन्त्रात्मक लाभ मिलता है किन्तु अशुद्ध पाठ किया तो उसका कोई दोष नहीं लगता।

**"जौं बालक कह तोतरि बाता।"**

जिस प्रकार बालक की तोतली बातें माँ को लुभाती हैं, उसी प्रकार हम श्लोक जैसा भी बोलते हैं, श्रीभगवान् को अच्छा लगता

है। हमारी भावना शुद्ध होनी चाहिए। क्रिया से श्रीभगवान् को अन्तर नहीं पड़ता अपितु भावना से अन्तर पड़ता है। सकाम भक्ति में दोष होते हैं। श्रीभगवान् की भक्ति में कोई दोष नहीं है।

**प्रश्नकर्ता-** अनिल भैया
**प्रश्न-** आपने दो सप्ताह पूर्व बताया था कि चतुर्दशी को श्राद्ध नहीं करना चाहिए अपितु अमावस्या को करना चाहिए। इसका क्या कारण है?
**उत्तर-** चतुर्दशी का काल चण्ड और प्रेत का काल है। इसलिए उस दिन श्राद्ध नहीं करने का विधान महाभारत में लिखा हुआ है। मैं तो वही बात कहता हूँ जो पूज्य स्वामी जी के मुख से सुनी हैं अथवा मैंने कहीं शास्त्र में पढ़ी हैं। महाभारत में स्पष्ट लिखा हुआ है कि चतुर्दशी का श्राद्ध नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार एकादशी का श्राद्ध द्वादशी को किया जा सकता है अथवा एकादशी को फलाहार करवा कर द्वादशी को अन्नदान किया जा सकता है। दोनों उपाय ठीक हैं।

**प्रश्नकर्ता-** ममता बन्सल दीदी
**प्रश्न-** पूजा तथा भक्ति में क्या अन्तर है तथा ध्यान की क्या विधि है?
**उत्तर-** पूजा, भक्ति का एक अङ्ग है। मान लीजिये, भक्ति पूरा समुद्र है जिसमें चलने वाली एक नौका पूजा है। भक्ति का तो "जो-जो करूँ, सो तेरी पूजा" भाव है। हम श्रीभगवान् के भाव में खड़े होकर भोजन पका रहे हैं तो वह भी भक्ति है। इस प्रकार पूजा एक क्रिया है जिसमें हम एक स्थान पर बैठकर बीस-पच्चीस मिनट पूजा का विधान करते हैं।

कोई भी स्वाध्याय सत्सङ्ग श्रवण भक्ति में आएगा। भक्ति के प्रकार निम्नलिखित हैं-

**"श्रवणं कीर्तनं विष्णुः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥"**

"श्रवण करो, कीर्तन करो, जप करो आदि" ये सब भक्ति के नौ प्रकार बताये गये हैं।

अष्टाङ्ग योग में ध्यान के आठ स्तर हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। व्यक्ति सीधा ध्यान करना चाहता है किन्तु यदि ध्यानयोग वाला ध्यान करना है तो उसके लिए सर्वप्रथम यम, नियम को सिद्ध करना पड़ता है, आसन को सिद्ध करना पड़ता है, प्राणायाम करना पड़ता है, प्रत्याहार, अर्थात स्वयं को अपनी इन्द्रियों के आहार से वञ्चित करना पड़ता है। इसके पश्चात ही ध्यान की जिस विधि में जाना हो, उसकी धारणा करके ध्यानयोग होता है।

हम सामान्य रूप से जो ध्यान करते हैं, वह ऐसा है कि हम जिस समय भी कुछ समय निकाल पाएँ, उस समय परमात्मा का चिन्तन करें। यह ध्यान होता है।

सामान्य रूप से जिस समय आप कुछ समय निकाल पाएँ, अपने मन को बाँधने का प्रयास कीजिये और उस समय बैठकर श्रीभगवान् का चिन्तन कीजिये। आरम्भ में ऐसा करने का अभ्यास करते हैं तो मस्तिष्क में नए-पुराने विचार आने आरम्भ हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि हम यदि सोलह घण्टे जागृत अवस्था में रहते हैं। छः घण्टे भोजन के तथा दो घण्टे निद्रा के निकाल दें तो हमारे जो क्रियाकलाप उन सोलह घण्टों में हैं, वे कितने सात्त्विक, राजसिक या तामसिक हैं, उनका भी प्रभाव पड़ता है। यदि मैं पूरे दिन राजस विचार करूँगा तो जैसे ही कुछ समय के लिए हमारा मस्तिष्क खाली होगा, वह उधर ही भागेगा। जो व्यक्ति पूरे दिन मोबाइल गेम खेलता है, वह खाली बैठते ही मोबाइल के विषय में ही सोचेगा। जो पूरे दिन कुछ खेलता है, वह खेल के बारे में सोचेगा। जो पूरे दिन फिल्में देखता है, वह फिल्मों के विषय में ही सोचेगा। इस प्रकार हमारे मन में खाली समय में वैसा ही चिन्तन आएगा। इसलिए जब हम सोलह घण्टे की अपनी दिनचर्या को सात्त्विक करेंगे, तब हम बीस-पच्चीस मिनट की धारणा कर सकते हैं। अतः आरम्भ में हमें ध्यान करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। करना ही है तो श्रीभगवान् का ध्यान करिये। मन भटक जाए तो कोई बात नहीं। मन को वापस लाकर श्रीभगवान् के विषय में चिन्तन करिये परन्तु वह टिकेगा तभी जब आप अपनी पूरी दिनचर्या को सात्त्विक करेंगी।

**प्रश्नकर्ता-** हनुमान प्रसाद भैया
**प्रश्न-** श्लोक क्रमाङ्क तैतालीस में स्वामी-भाव से क्या तात्पर्य है?
**उत्तर-** स्वामी-भाव का तात्पर्य है कि सारी प्रजा मेरी है। इसकी रक्षा करना मेरा कार्य है। क्षत्रिय राजा होता है न! तो राजा का भाव होता है, "यह प्रजा मेरी है। यह देश मेरा है। राज्य मेरा है।" इसकी रक्षा का भाव ही स्वामी-भाव है।

**प्रश्नकर्ता-** अपूर्वा दीदी

**प्रश्न-** आरम्भ में आपने कहा था कि हम जो सोचते हैं, वह हमें नहीं मिलता। इसका क्या तात्पर्य है?
**उत्तर-** आप जितने सुख की कल्पना करते हैं, उतना सुख नहीं मिलता है। कल्पना बहुत बड़ी होती है। सुख बहुत छोटा होता है तथा उसकी अवधि तो बिल्कुल नहीं होती। आप अति शीघ्र उसे भूल जाते हैं। वह सुख नहीं है।

उदाहरण के लिए, जिस भ्रमण की प्रतीक्षा में आपने तीन माह का सुख लिया, वह पन्द्रह दिन भी स्मरण नहीं रहता। इस प्रकार प्रसन्नता की कल्पना प्रसन्नता के सुख से बड़ी हो गयी।

**प्रश्नकर्ता-** कुलदीप भैया
**प्रश्न-** अध्याय सात, नौ, सत्रह तथा अट्ठारह में श्रीभगवान् ने कहा है कि मेरे अतिरिक्त किसी अन्य देवी-देवता की पूजा नहीं करो। इसका क्या अर्थ है?
**उत्तर-** श्रीभगवान् ने ऐसा बिल्कुल नहीं कहा है। जो इसका ऐसा अर्थ करता है, वह बिल्कुल असत्य अर्थ करता है। श्रीभगवान् ने ऐसा कभी नहीं कहा।

**"यजन्ते सात्त्विका देवान्"**

यहाँ श्रीभगवान् ने बिल्कुल स्पष्ट कहा है कि सात्त्विक व्यक्ति देवताओं की पूजा करते हैं। श्रीभगवान् ने कभी नहीं कहा कि मेरे अतिरिक्त किसी की पूजा मत करो। श्रीभगवान् ने कहा है कि जो देवताओं को ही अविधिपूर्वक सब कुछ मानते हैं, उनका यह मानना अविधिपूर्वक है। इसलिए देवताओं को मेरी शक्ति से काम करने वाला मानो और उनका पूजन करो। ये आज्ञा है। ये आज्ञा नहीं कि किसी देवता की पूजा मत करो।

श्रीभगवान् ने कहा है, “जो देवताओं का पूजन करते हैं, वे देवताओं को प्राप्त होते हैं। जो पितरों का पूजन करते हैं, वे पितरों को प्राप्त होते हैं। जो भूतों का पूजन करते हैं, वे भूतों को प्राप्त होते हैं और जो मेरा पूजन करते हैं, वे मुझे प्राप्त होते हैं।”

श्रीभगवान् ने कहा, “देवता का पूजन भी मेरे अधिष्ठान से करोगे तो मेरी प्राप्ति कर लोगे।”

अब इसे एक उदाहरण से समझिए। आपके क्षेत्र का एक पुलिस थाना होता है। उस पुलिस थाने का एक थानेदार होता है। उसकी शक्तियाँ उस राज्य के मुख्यमन्त्री या देश के प्रधानमन्त्री से हैं। अब यदि मैं कहूँ कि प्रधानमन्त्री से मेरी पहचान है। मैंने उनको कहा कि मेरे घर पर चोरी हुई है तो प्रधानमन्त्री कहेंगे कि “मैं क्या करूँगा भाई? अपने थाने में रिपोर्ट लिखवा दो। यह तो उसका कार्य है।” आपने थानेदार को रिपोर्ट लिखवायी। थानेदार ने आपका बैग ढूँढ दिया तो आपने कहा कि “प्रधानमन्त्री तो व्यर्थ ही हैं। सारा काम थानेदार ने ही किया। प्रधानमन्त्री अपने क्या काम आये?” अब जो देवताओं का पूजन करके देवताओं को ही सब कुछ मानने लग गया और ऐसा मानने लगा कि “श्रीभगवान् कुछ भी नहीं है। श्रीभगवान् का क्या काम? हमारा तो समस्त कार्य देवता का पूजन करने से ही हो जाता है”, तथा वह देवताओं को सबकुछ मानने लगा तो यह अविधि-पूर्वक है। जो यह समझता है कि देवता भी जो कार्य कर रहे हैं, वह श्रीभगवान् की शक्ति से ही कर रहे हैं, तो थाने पर रिपोर्ट तो लिखवानी है किन्तु इस थानेदार की शक्तियाँ तो प्रधानमन्त्री जी से आ रही हैं। जिसकी यह समझ है, वह कार्य तो थानेदार से ही करवाएगा किन्तु उसकी श्रद्धा प्रधानमन्त्री जी में होगी अर्थात श्रीभगवान् में होगी।

इसलिए देवताओं का पूजन करिये, श्रद्धा श्रीभगवान् में रखिए, अपने इष्ट में रखिए। देवता को पूजन तो अनिवार्य रूप से करना है। श्रीभगवान् ने कहा है,

**"यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो"**

तीसरे अध्याय में श्रीभगवान् ने कहा है,"जो यज्ञ में देवताओं को आहुति दिए बिना भोजन करता है, वह चोरी करता है। श्रीभगवान् ने देवताओं को आहुति देने का विकल्प नहीं बताया है बल्कि कहा है कि "नहीं करोगे तो चोरी का पाप लगेगा"। अतः देवताओ को आहुति तो देनी है किन्तु देवताओ को ही सब कुछ नहीं मानिए। मानने में भी कोई हानि नहीं है। श्रीभगवान् ने कहा है, “तुमको स्वर्ग की प्राप्ति हो जाएगी।”

हम केवल गीताप्रेस की श्रीमद्भगवद्गीता को ही प्रमाण मानते हैं।

**।।ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।**

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

**विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!**
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

---

**जय श्री कृष्ण !**
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

---

**हर घर गीता, हर कर गीता!**
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

---

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

---

**|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||**
**||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||**